मेरे प्रिय आत्मन्,

मैं कोई उपदेष्टा नही हूँ और मेरे पास आपको देने के लिए कोई विचार भी नहीं है। हां, एक संदेश और एक प्रकाश की किरण की प्रतीति अवश्य है, उसी संबंध में आपसे चर्चा करना चाहता हूं। इस चर्चा के पीछे एक ही आकांक्षा है और एक ही दृष्टि है कि मुझे कुछ ऐसा दिखना शुरू हुआ है, जिसमें असीम आनंद और शांति की अनुभूति है। मैं चाहता हूँ कि इस असीम आनंद में आपको भी साझीदार बना सकूं।

मैं कोई नया विचार आपको नहीं दे रहा हूं। मैं केवल उस विधि के संबंध में चर्चा करना चाहता हूँ जहाँ सब विचार छूट जाते हैं। मैं किसी नए विचार से आपके मस्तिष्क को भरना नहीं चाहता और जो लोग ऐसा करते हैं, वह आपका अहित करते हैं क्योंकि विचार ज्ञान तक नहीं ले जाता है। मैं उस विधि के बाबत थोड़ी सी बात करना चाहता हूँ जिससे आप विचार मुक्त हो सकते हैं और वहाँ पंहुच सकते हैं, जहाँ ज्ञान का मूलस्रोत है। ज्ञान शास्त्रीय अध्ययन और विचारों के संकलन से उपलब्ध नहीं होता है। ज्ञान मनुष्य का स्वभाव है, उसका स्वरूप है जिसे अनुभव करने के लिए बाहरी साधनों की आवश्यकता नहीं है। अपने ज्ञान स्वरूप को जानने के लिये वह सब छोड़ना होगा जो बाहर से इकठ्ठा किया गया है। बाहर के जगत से जो भी सीखा है, उसे अनसीखा करना होगा ताकि मूलभूत शाश्वत तत्व पाया जा सके।

परमज्ञान का स्त्रोत कहीं बाहर नहीं है बल्कि हमारे भीतर ही है। परमज्ञान बाह्य तत्व नहीं है, यह मनुष्य के आंतरिक जीवन का अंग है। इस ज्ञान को पाने की आकांक्षा प्रत्येक मनुष्य में होती है। अपनी क्षुद्र सीमाओं में मनुष्य स्वयं को अंसतुष्ट अनुभव करता है। मनुष्य अपनी असंतुष्टि और अपूर्णता से ऊपर उठना चाहता है। पृथ्वी का प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी मात्रा में अपने भीतर एक अतृप्ति महसूस करता है। वास्तव में, यह अतृप्ति ही पूर्णता की प्यास है। यही पूर्णता की प्यास, धर्म के जन्म का कारण बन जाती है और यही प्यास साधना के जन्म का कारण बन जाती है।

इस पूर्णता की आकांक्षा को तृप्त करने हेतु एक ही मार्ग सत्य है- और वह मार्ग है, बाहर की परिधि से मुक्त होकर भीतर के केंद्र से संयुक्त हो जाना। सामान्यतः किसी भी साधना से जुड़े हुए लोग दरअसल साधना के बाहरी रूप को पकड़ लेते हें। मनुष्य के जीवन को दो हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है। एक मनुष्य की परिधि का जीवन है जहाँ उसका व्यवहार है और संबंध हैं, जहाँ वह दूसरे लोगों से संबंधित है। दूसरा मनुष्य का केंद्रिय जीवन है। जहाँ व्यवहार या संबंध की जरूरत ही नही है, जहां केवल चेतना का वास है। इस चेतना तक पंहुचने के लिए यदि किसी ने बाहरी आचरण का सहारा लिया तो वह आत्म-प्रवंचना में पड़ सकता है, आत्म-दमन में उतर सकता है। इस तरह मनुष्य अपने केंद्र तक कदापि नहीं पहुँच सकता। केन्द्र तक पहुँचना हो तो सीधे केन्द्र पर ही प्रयास करना आवश्यक है। नैतिक आचरण मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन तक नहीं पहुँचा सकता है। हम आज तक जैन दर्शन के संबंध में बहुत बड़ी भ्रांति का प्रचार करते रहे हैं कि जैन धर्म एक नैतिक धर्म है। डा. राधाकृष्णन ने अपने ग्रथों में लिखा है- जैन धर्म एक नैतिक व्यवस्था है। आप सोचते हैं कि शायद यह कोई बहुत सम्मान की बात है! यह बात सम्मान की नहीं है क्योंकि मूलतः नीति का संबंध मनुष्य के ब्राह्य जीवन से होता है। कोई धर्म नैतिक नहीं होता है वस्तुतः धर्म यौगिक होते हैं।

धर्म की क्रांति योग से प्रारंभ होती है और नीति परिणामस्वरूप घटित होती है। अहिंसा की साधना जैन विचारधारा का मुख्य केंद्र है लेकिन यदि अहिंसा को केवल बाहरी परिधि पर साधा जाए तो वह दमन है। केवल

बाहरी दमन के मार्ग से कोई अहिंसा तक नहीं पहुंच सकता। हिंसा की प्रवृत्ति और वेग को बाहर से दबाया जा सकता है, परंतु उन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता। वास्तविक अहिंसा तो ध्यान के बाद परिणाम की तरह स्वतः घटित होती है।

ध्यान से पहले जीवन में अहिंसा का फलित होना संभव नहीं है। अहिंसा को प्रत्यक्ष नहीं साधा जा सकता है। अहिंसा योग और ध्यान की साधना का परिणाम है। जैसे 'फूल' माली की मेहनत का परिणाम हैं। माली बगीचे में बीज बोता है, पानी डालता है, रोशनी की व्यवस्था करता है, खाद का इंतजाम करता है, इससे पौधा बड़ा होना शुरू होता है और एक दिन उस पौधे में फूल आते हैं। अगर माली सीधे ही फूलों को उगाना चाहे तो कोई उपाय नहीं है। सर्वप्रथम बीज बोने ही पड़ते हैं, प्रतीक्षा करनी पड़ती है और फिर अंतिम निष्कर्ष में फूल उपलब्ध होते हैं।

अहिंसा को परम धर्म कहा गया है क्योंकि वह समस्त जीवन-साधना का अंतिम फूल है। अहिंसा को सीधे पैदा नहीं किया जा सकता और जो लोग फूलों को सीधे ही पैदा करने की कोशिश में लग जाएंगे, वह कभी फूलों को नहीं पा सकते।

एशिया के एक बहुत बड़े विचारक और नेता ने अपने बचपन का एक संस्मरण लिखा है- वे कहते हैं कि जब मैं बच्चा था तो मेरी मां की एक बगिया थी। एक बार मां बीमार पड़ी। मैंने उनसे कहा, आप घबराएं नहीं! मैं आपकी बगिया की देखभाल करूंगा। मां इतनी बीमार थी कि बाहर बगीचे तक आने में असमर्थ थी। मैं फूलों और पत्तियों को रोज झाड़ता, पोंछता। बहुत प्यार करता, लेकिन फिर भी सारी बगिया धीरे धीरे कुम्हलाने लगी। 15 दिन बाद जब मेरी मां स्वस्थ हुईं और बाहर आईं तो उन्होंने देखा कि पूरी बगिया उजाड़ हो गई थी। उन्होंने पूछा कि यह क्या किया? मैंने कहा- मैंने तो एक एक फूल को और एक एक पत्ती को पानी से नहलाया, पोंछा, साफ किया। लेकिन न मालूम क्यों ये बगिया कुम्हलाती गई? तब मां ने कहा- फूलों के प्राण फूलों में नहीं होते। फूलों के प्राण पौधे की जड़ में होते हैं। फूलों को नहला देने से और पोंछ देने से पौधा जीवित नहीं रहता है। पौधों को संभालना हो तो उनकी जड़ों में पानी पहुंचना आवश्यक है। फूल सुंदर दिखते हैं, फूल प्यारे होते हैं, फूल दिखाई पड़ते हैं परंतु जड़ें दिखाई नहीं पड़ती हैं। इन भूमिगत जड़ों से ही पूरे पौधे में प्राणों का संचार होता है।

वास्तव में, धर्म के जो फूल हमको बहुत प्रिय और अलौकिक प्रतीत होते हैं या धर्म की साधना के अंत में जिस निष्कर्ष को पाने की हमारी आकांक्षा होती है, वस्तुतः उन मौलिक परिणामों के प्राण तो धर्म की जड़ों में होते हैं।

महावीर या उनकी कोटि के अन्य सद्पुरूषों से जो अहिंसा और करुणा प्रकट हुई, जो प्रेम प्रकट हुआ, वह प्रेम सीधे पैदा नहीं किया जा सकता है। उसकी पृष्ठभूमि में योग की अदृश्य जड़ें हैं। योग की उन जड़ों को यदि हम अनदेखा करते हैं तो हमारी अहिंसा थोथी हो जाती है। केवल ऊपर से लादी हुई अहिंसा होगी और परिणाम में दमन के द्वारा हम स्वयं को ही विकृत और कुरूप कर लेंगें। खोखली अहिंसा के द्वारा हमारे व्यक्तित्व के सौंदर्य को चरम शांति उपलब्ध नहीं हो सकती है। जो व्यक्ति आत्मज्ञान के अभाव में अहिंसा को साधेगा, वह एक तरह की आत्मा-हिंसा में संलग्न हो जाएगा।

स्मरण रखें, मनुष्य के भीतर हिंसा का जो वेग है, जो हिंसा की सत्ता है, वो क्यों है? हिंसा की सत्ता केवल एक कारण से है- आत्मज्ञान का अभाव अर्थात हमें अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है। यदि मुझे स्वयं के स्वरूप का ज्ञान नहीं है तो मुझे दूसरे के स्वरूप का भी ज्ञान नहीं हो सकता है। पर-स्वरूप को जानने की पहली सीढ़ी है स्व-स्वरूप को जानना और अनुभव करना कि मेरे भीतर एक अनंत अमृत चैतन्य है। जिस क्षण इस अमृत चैतन्य

के प्रति मेरी आंख खुलेगी उसी क्षण स्थूल शरीर की सीमा भी टूट जाएगी और मैं अन्य के भीतर भी उस अमृत चैतन्य को देख सकूंगा। इस अनुभूति के माध्यम से मूलतः अहिंसा का उदय होता है और यह अहिंसा निश्चित ही परिणाम के रूप में घटित होती है। आत्मबोध का यह अनुभव जीवन को रूपांतरित कर देता है, हमें ज्ञात होता है कि एक ही चेतन-शक्ति सबके भीतर विद्यमान है- सूक्ष्म कीटाणुओं से लेकर मनुष्य तक, एक ही सत्ता का बोध, एक ही आत्मा का बोध और एक ही चेतना की उपस्थिति है। इसी विराट अनुभूति के परिणामस्वरूप अहिंसा फलित होती है।

परंतु इस स्वानुभूति के पूर्व यदि केवल ग्रंथों के अध्ययन द्वारा, शास्त्रों के ज्ञान द्वारा, प्रवचनों और उपदेशों आदि को सुनकर जो अहिंसा को साधने में लग जायेगा, वह केवल और केवल आत्म-हिंसा में उतर जाएगा।

आत्म-हिंसा के संबंध में भी आपसे दो शब्द कहना चाहता हूं। हिंसा को छोड़ना वस्तुतः एक नकारात्मक पहलू है। जैसे कमरे में अंधेरा भरा हो, और वहां मुझे प्रकाश लाना है। यदि कोई कहे कि पहले अंधेरे को हटाना पड़ेगा तब प्रकाश लाया जा सकता है क्योंकि अंधेरा प्रकाश का विरोधी है। यदि यह बात मानकर मैं अंधेरा भगाने के काम में लग जाऊं तो एक नहीं अपितु अनंत जीवन में भी अंधेरा लेशमात्र नहीं हट पाएगा। दरअसल अंधेरे की कोई सत्ता नहीं है। अंधेरा नकारात्मक है, नेगेटिव है। नकारात्मक होने के कारण अंधेरे को सीधे नहीं हटाया जा सकता है। अंधेरा केवल प्रकाश के अभाव का नाम है। इस सत्य पर बहुत गहराई से विचार कर लेना आवश्यक है। आत्मज्ञान के अभाव में ही जीवन में हिंसा, अब्रह्मचर्य और परिग्रह है। आत्मज्ञान का अभाव ही जीवन में विकृति पैदा करता है। आत्मज्ञान की उपलब्धि के पश्चात ही अहिंसा फलित होती है।

वास्तव में, अंधेरे की कोई सत्ता ही नहीं है इसलिए विरोध का भी कोई सवाल नहीं है। अंधेरा प्रकाश को समाप्त नहीं कर सकता। यदि एक स्थान पर दिया जल रहा हो और आप उस दीपक के प्रकाश में थोड़ा सा अंधेरा लाकर डालना चाहें तो यह असंभव है। अंधेरे को आप ला नहीं सकते, उठा नहीं सकते, काट नहीं सकते, तौल नहीं सकते, क्योंकि वह है ही नहीं। अंधेरे की अपनी कोई सत्ता नहीं है। वह केवल प्रकाश के अभाव का नाम है। इसलिए अंधेरे को प्रत्यक्ष रूप से अलग नहीं किया जा सकता है। प्रकाश के द्वारा ही अंधेरे को दूर किया जा सकता है। समस्त दर्शनों, धर्मों और योग का भी यही मानना है। विशेषतः जैन योग मानता है कि आत्मज्ञान के दीपक को जलाकर ही अहिंसा उत्पन्न हो सकती है। प्रथम आत्मज्ञान है फिर अहिंसा है। आत्मज्ञान का फल ही अहिंसा है। महावीर की वाणी में यह बात स्पष्टतः गोचर होती है कि आत्मज्ञान का फल अहिंसा है।

आत्मज्ञान का क्या अर्थ है?

क्या यह वही ज्ञान है जो आप ग्रंथों और शास्त्रों से प्राप्त करते हैं? नहीं, ग्रंथ के ज्ञान से अहिंसा नही आती। आत्मज्ञान के परिणामस्वरूप अहिंसा फलित होती है। यदि हम आत्मज्ञान के पूर्व अहिंसा को साधने का प्रयास करेंगे तो हम आत्म-हिंसक हो जाएंगे। हिंसा एक प्रवृत्ति है; पहले जो हिंसा दूसरों पर प्रकट होती थी, अब वही हिंसा, वही क्रोध का वेग, स्वयं पर प्रकट होना प्रारंभ हो जाएगा। जो व्यक्ति दूसरों के प्रति हिंसा को प्रयास से रोक लेगा, उसके भीतर आत्म-दमन प्रारंभ हो जाएगा। कितने तपस्वी और साधु इसी आत्म-दमन के कारण स्वयं के साथ ही दुश्मन की तरह व्यवहार करते हैं। वे स्वयं के प्रति कठोर और हिंसक हो जाते हैं। कोई तपती रेत में बैठा है। कोई कांटों के बिस्तर पर लेटा हैं। कोई एक टांग पर खड़ा है। ऐसे आत्म-हिंसक लोग शरीर को कष्ट देते हैं। इसके अतिरिक्त कई अन्य सूक्ष्म ढंग भी हैं जिससे लोग स्वयं को सताने का प्रयास करते रहते हैं। आत्मज्ञान के पूर्व किए गए किसी भी प्रयास में आत्म-हिंसा की शत-प्रतिशत संभावना है।

यह हमारी भ्रांति है कि हम स्वयं से प्रेम करते हैं। अधिकांश मनुष्य स्वयं के प्रति घृणा और असंतोष से भरे हुए हैं। मेरे अनुसार, धर्म हमें एक ही बात सिखाता है कि कैसे हम स्वयं के प्रति सद्व्यवहार कर सकें? मेरी यह बात आपको अजीब लगेगी क्योंकि आमतौर से हम सब समझते हैं कि हम स्वयं के प्रति प्रेम से भरे हैं या मोह से भरे हैं। हम अपने प्रति बहुत स्वार्थ से भरे हैं। इसलिए सब सिखाते हैं कि हमें इस स्वार्थ को और इस मोह को छोड़ना है। परंतु मेरा मत इसके विपरीत है।

मेरा कहना है आपने स्वयं को प्रेम करना कभी सीखा ही नहीं है। यदि व्यक्ति स्वयं को प्रेम करना सीख ले तो जीवन एक परिपूर्णता को उपलब्ध हो जाता है। मेरा मानना है कि केवल बुद्ध और महावीर जैसे लोग ही स्वयं को प्रेम करते थे। हम में से कोई भी स्वयं को प्रेम नहीं करता है।

मैं ऐसा क्यों कह रहा हूं?

पहली बात, हमारे जीवन व्यतीत करने के ढंग से जीवन के प्रति हमारे व्यवहार का पता चलता है। यदि हम अपने जीवन का विश्लेषण करेंगे तो यह स्पष्ट प्रकट हो जाएगा कि हम अपने साथ दुर्व्यहार कर रहे हैं। यूरोप के एक महान विचारक, बर्ट्रेंड रसेल ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात लिखी है- मनुष्य ने तीन तरह के प्रयास किए हैं। पहला प्रयास मनुष्य ने प्रकृति को जीतने के लिए किया, जिससे विज्ञान का जन्म हुआ। दूसरा प्रयास उसने मनुष्य और मनुष्य के बीच संबंधों के बाबत किया, जिससे समाजशास्त्र, राजनीति और नीति आदि का जन्म हुआ। तीसरा और अंतिम प्रयास मनुष्य ने स्वयं के साथ व्यवहार के बाबत किया, जिससे धर्म का जन्म हुआ है।

मनुष्य अपने साथ जो भी व्यवहार करता है, उसका संबंध धर्म से है। धर्म का किसी दूसरे से कोई लेना-देना नहीं है। धर्म मूलतः वैयक्तिक घटना है। धर्म का समूह, संप्रदाय या संगठन आदि से कोई संबंध नहीं है। विडम्बना यह है कि हम स्वयं को स्वयं से परिचित होने का अवसर ही नहीं देते हैं। हम सदैव बाहर के कामों से, बाहर की घटनाओं से, बाहर के व्यक्तियों से ही घिरे रहते हैं। एकांत हमें काटता है, अकेलापन हमें भयभीत करता है क्योंकि अकेलेपन में हमारा सामना स्वयं से होने लगता है। स्वयं की तस्वीर सामने ना आ जाए, स्वयं से साक्षातकार ना हो जाए, इसीलिए स्वयं से बचने के लिए हम बाहरी व्यवस्थाओं का आयोजन कर लेते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हम किसी भी तरह से वे सारे उपाय करते रहते हैं जिससे स्वयं को जानने से बचा जा सके।

(करीब आधा मिनट का आडियो मिसिंग है।)

हम संपूर्ण जीवन क्षुद्र वस्तुओं को एकत्रित करने में बिता देते हैं। हम वास्तव में अपने साथ बहुत दुर्व्यवहार कर रहे हैं। हम अपने ही प्रति हिंसक हैं, हम आत्म-घातक हैं। एक-एक क्षण प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु के करीब खिसक रहा है, जीवन हाथ से छूट रहा है। यदि इस बहुमूल्य जीवन का उपयोग हम उस परम सत्य को पाने के लिए नहीं करते हैं जो मृत्यु के बाद भी हमारा सहयोगी होगा, तो निश्चित ही जीवन की इस महायात्रा में हम अपने साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं।

मैंने सतगुरु नानक के जीवन के बारे में एक घटना पढ़ी है कि वह लाहौर में ठहरे हुए थे, उनके पास एक व्यक्ति आता था। वह व्यक्ति बहुत समृद्ध और धनी था। नानक ने उससे कहा- मित्र, मेरा एक छोटा सा काम कर दो। नानक ने उसे कपड़े सिलने वाली एक छोटी सी सुई दी और कहा कि जब भी तुम्हारी मृत्यु होगी तो तुम अपनी मृत्यु के बाद यह सुई मुझे वापस लौटा देना।

वह धनी व्यक्ति सुई लेकर घर चला गया। सुई संभालने का काम बहुत छोटा सा दिखता था, लेकिन काम बहुत कठिन था और रात भर वह सो नहीं पाया। रात भर वह सोचता रहा कि कैसे इस सुई को मृत्यु के पार ले जाऊंगा? वैसे सुई बहुत छोटी है लेकिन फिर भी सुई को मृत्यु के पार ले जाना कैसे संभव होगा? उसने पाया कि यह असंभव है। सुबह जाकर उसने नानक को वह सुई वापिस कर दी।

(करीब डेढ़ मिनट का आडियो मिसिंग है।)

यदि एक छोटी सी सुई को मृत्यु के बाद, साथ नहीं ले जाया जा सकता, तो तुम्हारे पास ऐसा क्या है जो वहां उस पार जा सके? यदि ऐसा कुछ तुमने अभी तक नहीं कमाया है जो उस पार जा सके तो तुमने अपना जीवन कंकड़-पत्थर बीनने में बिता दिया है। इस जीवन से अद्भुत अमृत, अद्भुत आनंद और आलौकिक अनुभूतियों के द्वार खोले जा सकते थे। जिस जीवन में दिव्य हुआ जा सकता था, उसे तुमने व्यर्थ ही खो दिया। इससे बड़ा अमानवीय व्यवहार स्वयं के प्रति और क्या हो सकता है? इससे बड़ी आत्म-हिंसा और क्या हो सकती है? इससे बड़ा आत्मघात और क्या हो सकता है?

हमारे जीवन की संपूर्ण पृष्ठभूमि क्रोध और घृणा जैसी प्रवृत्तियों से भरी हुई है। यह समस्त नकारात्मक प्रवृत्तियां हमें क्षीण कर देती हैं और हमारे जीवन को अत्यंत कष्ट व दुख से भर देती हैं।

एक बार भगवान बुद्ध किसी गांव से गुजर रहे थे। उस गांव के कुछ लोगों ने आकर बुद्ध को बहुत गालियां दी।

बुद्ध, महावीर, नानक और जीसस जैसे लोगों को सदैव गालियों सुननी पड़ी हैं। महावीर को तो लोगों ने मारा भी, चोट भी पहुंचाई। ऐसा नहीं है कि महावीर ने अहिंसा के कारण उनका प्रतिरोध नहीं किया। जिस दिन महावीर को मारा गया और उनके कान में सलाखें ठोंक दी गईं, उस दिन भी महावीर ने कोई प्रतिकार नहीं किया। महावीर ने प्रतिकार इसलिए नहीं किया क्योंकि वह स्वयं के प्रति हिंसा से नहीं भरना चाहते थे। जब भी क्रोध पैदा होता है तो दूसरे को हानि पंहुचाने से पहले वह स्वयं उसी व्यक्ति को हानि पंहुचाता है और यह आत्म-हिंसा है। यदि प्रतिकार पैदा होता है तो उसकी लपटें स्वयं को जला देती हैं। अहिंसा का अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम किसी दूसरे के प्रति बुरा व्यवहार नहीं कर रहे हैं, मूलतः अहिंसा का अर्थ है कि हम स्वयं के प्रति हिंसा की भावना का त्याग कर रहे हैं।

बुद्ध का उन गांव के लोगों ने अपमान किया, गालियां दी। बुद्ध ने कहा- यदि आप की बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं, मुझे बहुत लंबी यात्रा तय करनी है?

बुद्ध के साथ उनका शिष्य आनंद भी था। आनंद बोला- भगवन्! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन लोगों को कुछ कहना चाहता हूं। आपका यह अपमान मेरे लिए असहनीय है।

बुद्ध बोले- आनंद, वे लोग भूल कर रहे हैं तो उसका दंड तुम स्वयं को क्यों देना चाहते हो? दूसरों की भूल के लिए स्वयं को दंड देना नासमझी है।

आनंद ने पूछा, मैं स्वयं को कैसे दंड दे रहा हूं?

बुद्ध ने कहा- उनके शब्दों को सुनकर तुम्हारे भीतर जो क्रोध की लपटें जलने लगी हैं। उसमें पहले कौन जलेगा? उन लपटों से पहले किसका नुकसान होगा? हमारे भीतर उठी हिंसा की लपटों से सर्वप्रथम हमारा ही अहित होगा। यदि गौर से हर व्यक्ति अपने जीवन का अवलोकन करे तो हम पाएंगे कि हर क्षण हम अपना ही अहित कर रहे हैं। यदि अपने भीतर घृणा और हिंसा को स्थान देकर हम सोचते हैं कि हम स्वयं से प्रेम करते हैं

तो यह बहुत हैरानी की बात है! यदि आप स्वयं से प्रेम करते हैं तो क्रोध असंभव हो जाएगा। यदि आप स्वयं से प्रेम करते हैं तो घृणा का जहर असंभव हो जाएगा।

इसलिये मैं नैतिक ढंग से, हिंसा से अहिंसा तक पहुँचने का समर्थन नहीं करता हूं। तब अहिंसा तक पंहुचने का क्या मार्ग हो सकता है?

दरअसल परिधि पर किए गए प्रयोग का परिणाम केन्द्र को प्रभावित नहीं कर सकता है लेकिन केन्द्र पर किए गए प्रयोग के प्रभाव से परिधि पर स्वतः ही अहिंसा का आविर्भाव होगा। केन्द्र से परिधि की ओर फलित होने वाली अहिंसा की खिलावट एक फूल की भांति होती है। तब अहिंसा सहज और स्वभाविक होती है। वह अहिंसा किसी दमन से उत्पन्न नहीं होती है। वह अंहिसा आत्म-उत्पीड़न नहीं करती है। जब ऐसी सहज अहिंसा संपूर्ण जीवन पर फैलने लगती है तो इससे जीवन में आनंद का उदय होता है।

परंतु केन्द्र पर यह प्रयोग कैसे करें?

केन्द्र पर प्रयोग करने हेतु नैतिक आचरण का नहीं अपितु योग का सहारा लेना होगा।

योग क्या है? योग चित्तवृत्तियों को शून्य स्थिति में ले जाने की पद्धति है। साधारणतः हमारी चेतना विचारों से आच्छादित होती है। जैसे आप कभी फिल्म देखने गये हों या नाटक देखने गये हो तो उस एक घंटे के लिए आप स्वयं को भूल जाते है। आँख के सामने चित्र चलते रहते हैं और आप स्वयं को भूले जाते है। तीन घंटे बाद जब चित्रों का प्रवाह टूटता है, तब आप उठते हैं। तीन घंटे तक आप स्वयं के प्रति विस्मृत थे। इसी प्रकार हमारे मन के पर्दे पर भी जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त एक फिल्म चलती रहती है, उस फिल्म के चलचित्रों का उलझाव इतना अधिक हो जाता है कि चेतना कभी स्वयं पर लौट नहीं पाती है।

यदि आप अपने मन का निरीक्षण करें तो पाएंगे कि मैं अभी आपसे बोल रहा हूँ लेकिन मेरे बोलने के दौरान भी भीतर आपके मन पर लगातार चित्र चल रहे हैं, विचार चल रहे हैं। भीतर विचारों का एक सतत प्रवाह है, एक क्षण का भी विराम नहीं है, एक अंनत श्रृंखला चल रही है। अतः चौबीस घंटे 'पर' में उलझे रहेने के कारण 'स्व' तक पहुँचना संभव नहीं हो पाता है। इस 'पर' को विलीन करना होगा, चेतना को 'पर' का आधार मिल रहा है। चेतना को निराधार करना होगा ताकि बाहर कहीं कोई आधार ना पाकर वह स्वतः ही स्वंय 'पर' लौट आए।

योग, चेतना को आधार शून्य करने का प्रयोग है। चेतना में जितने 'पर' तथा 'विचार' अधिक होंगे, चेतना स्वयं से उतनी ही दूर जायेगी और जितने 'पर' तथा 'विचार' कम होगें, चेतना उतना ही स्वयं की तरफ लौटेगी। साधारणतः हमारी चेतना का सौ प्रतिशत प्रवाह बाहर की तरफ है। योग के माध्यम से यह बाहरी प्रवाह कम होगा और चेतना स्वयं पर लौटने लगेगी। चेतना के स्वयं की ओर प्रवाहित होने से व्यक्ति को मूल प्रश्न का उत्तर मिलता है कि 'मैं कौन हूँ? चेतना के स्वयं के ओर प्रवाहित होने से व्यक्ति को आत्मबोध होता है।

आत्मबोध या स्वयं के स्वरूप का बोध होते ही व्यक्ति के जीवन का सारा अज्ञान गिर जाता है। जीवन की समस्त मिथ्या धारणाएं और हिंसा, क्रोध, घृणा आदि विकार गिर जाते हैं। जिस क्षण व्यक्ति स्वयं से परिचित होता है उसी क्षण वह समस्त से परिचित हो जाता है। अतः योग मन के सतत विचार प्रवाह को शून्य करने की विधि है। इस विधि के बिना समस्त धर्म निष्प्राण हो जाते हैं। किसी भी धर्म का अनुयायी इस प्रयोग के बिना जीवन के मूल गंतव्य तक नहीं पहुँच सकता है।

संभव है कि किसी व्यक्ति का आचरण बाहर से सात्विक दिखाई पड़े, वह सदगृहस्थ दिखाई दे, लेकिन योग के अभाव में उसके भीतर एक अंधेरा मौजूद रहेगा। उस भीतर के अंधेरे पर ही सीधी चोट करनी है। सीधी चोट विचारों के मुक्त होने से होती है।

अब, विचारों से कैसे मुक्त हो सकते हैं? विचारों का प्रवाह कैसे विसर्जित किया सकता है? कैसे चेतना स्वयं पर स्थित हो सकती है? आत्मरमण कैसे हो सकता है? क्या एक-एक विचार को धक्के देकर निकालना होगा?

नहीं, विचार को धक्के देकर नहीं निकाला जा सकता है। इस ढंग से विचारों से मुक्ति असंभव है। यदि आप में से कुछ लोग ध्यान या सामायिक के लिये बैठते हैं तो आपने अनुभव किया होगा कि चाहे आप माला फेरें या मंत्रों का उच्चार करें परंतु भीतर विचार का प्रवाह शून्य नहीं होता है। इस विचार प्रवाह को बलपूर्वक हटाने की कोशिश में आज तक कोई सफल नहीं हुआ है। विचारों को हटाने की कोशिश में वे दुगने वेग से वापिस आते हैं।

आप प्रयोग करके देख सकते है- कोई भी छोटा सा नाम लें, जैसे राम, अब इस 'राम' शब्द को अपने मन से हटाने की कोशिश करें। एकांत में बैठकर भरपूर प्रयत्न करें कि 'राम' शब्द मुझे याद ना आये, 'राम' शब्द मेरे मन में ना आये और आप पायेंगे कि 'राम' शब्द अत्यधिक तीव्रता से आपके मन में आ रहा है।

तिब्बत में एक साधु हुआ है मिलारेपा। उसके पास एक युवक आता था। वह युवक बहुत दिनों तक 'मिलारेपा' के पीछे लगा रहा कि वह उसे कोई सिद्धि सिखा दे। साधु ने कई बार कहा कि मेरे पास कोई सिद्धि, कोई चमत्कार नहीं है, मेरा पीछा छोड़ो। युवक हठ करता रहा कि मैं आपसे कोई न कोई सिद्धि या मंत्र चाहता हूँ। एक दिन साधु ने कहा- अच्छा, आज एक मंत्र ले जाओ। अमावस की रात्रि थी, साधु ने कहा एक छोटा सा मंत्र देता हूँ जिससे पाँच मिनट में तुम सिद्ध हो जाओगे और जो भी करना चाहोगे हो सकेगा, लेकिन एक बात का स्मरण रखना जब तुम मंत्र को पढ़ो तो किसी बंदर का स्मरण ना आये। बस यही ध्यान रखना, अन्य कोई शर्त नहीं है, अन्य कोई तपश्चर्या नहीं करनी है, कोई उपवास वगैरह नहीं करना है, केवल मिनट इस मंत्र को बोलना है परंतु ध्यान रहे कि बंदर का ख्याल ना आये।

युवक बहुत खुश हुआ, नाचता हुआ घर लौटा। वह सोचने लगा कि इतनी सरलता से मुझे सिद्धि मिल जाएगी। केवल पांच मिनट मंत्र पढ़ना है। और बंदर का तो दूर-दूर तक मुझ से कोई लेना-देना नहीं है, बंदर कहां से आ जाएगा मेरे ख्याल में? लेकिन जैसे-जैसे वह घर की तरफ बढ़ने लगा उसकी आंखों में बंदर दिखने लगा, वह बहुत घबराया। रास्ते पर चलते हुए जैसे उसके मन में बंदरों की कतारें चलने लगीं। उसने बंदरों के इस विचार को झिड़का, हटाया। लेकिन बंदर का विचार था कि जाता ही नहीं था।

यदि आप भी होते तो शायद आपके साथ भी यही होता। यह मन का मूलभूत नियम है। जब वह युवक अपने घर पहुँचा तो बंदरों के अलावा उसके मन में दूसरा कोई ख्याल ही नहीं था। आँख बंद करे तो बंदर, आँख खोले तो बंदर, उठे तो बंदर, बैठे तो बंदर। वह बहुत घबराया। सोचा, रात को स्नान करके शांति से बैठता हूं।

... मगर फिर बंदर, मंदिर में बैठे तो बंदर, नदी के घाट पर बैठे तो बंदर... ! उसने सब कोशिशें कर लीं लेकिन बंदर के विचार ने उसे लगभग पागल कर दिया था। सुबह वह थका-मांदा वापस साधु के पास लौटा और कहा कि यह रखो अपना मंत्र, अब ये सिद्ध नहीं हो सकता क्योकि बंदर पीछा नहीं छोड रहे हैं।

यदि कोई भी व्यक्ति अपने विचारों से लड़ेगा, उसका यही हाल होगा। जब एक छोटा सा विचार मन से नहीं निकल पाता है तो मन की धूल कैसे निकलेगी? यदि किसी धूल भरे कमरे में जाकर हम वहां अधिक हलचल करेंगे तो वहाँ और ज्यादा धूल उड़ने लगेगी और वह धूल पूरे कमरे में फैल जायेगी। कमरे में धूल न भरे, इस के लिए क्या विधि करनी होगी? हमें उस कमरे में बहुत ही आहिस्ता से जाना होगा, यदि फिर भी कुछ धूल उड़ती है तो चुपचाप खड़े हो जाना चाहिए, इससे धूल अपने आप नीचे बैठ जाएगी।

मन का भी ठीक यही नियम है कि उसे छोड़ दें, मन के साथ कोई छेड़खानी न करें, चुपचाप प्रवेश करें, प्रारंभ में थोड़े-बहुत विचार उठेगें, धूल उठेगी। परंतु इसे जबरदस्ती नीचे बैठाने की कोशिश मत करना, नहीं तो

सब उल्टा हो जाएगा और धूल और तेजी से फैलने लगेगी। यदि हम कुछ भी न करें तो विचार धीरे धीरे स्वयं ही शांत हो जाते हैं। दमन या विरोध की नहीं अपितु विचारों के विसर्जन की आवश्यकता है।

पर यह कैसे होगा? कैसे हम मन के भीतर जायें कि विचार धीरे-धीरे स्वतः गिर जायें और पर्दा खुल जाये, दर्पण साफ हो जाये और शून्य में प्रवेश हो सके?

मन की समस्त क्रियाओं के प्रति जागरूक होना ही, मन से मुक्ति का मार्ग है। क्रोध, हिंसा या घृणा को दबाना नहीं है, मारना नहीं है, इनसे लड़ना नहीं है, इन्हें दूसरों पर व्यक्त नहीं करना है। केवल और केवल क्रोध के प्रति जागना है। जागते ही हम पायेंगे कि क्रोध विसर्जित होने लगता है। जागते ही हम पायेंगे कि विचार विसर्जित होने लगते हैं, और इस जागरण से धीरे-धीरे मन की सत्ता समाप्त हो जाती है।

योग मन के प्रति जागने की एक पद्धति है। इस आत्मजागरण से ही महापुरूषों के जीवन में विजय संभव हुई है। महावीर ने कहा है जो आत्मदृष्टा है उसके लिये कोई उपदेश नही है। जो पश्यक है, जो स्वयं को देखने वाला है, उसके लिये सब शास्त्र व्यर्थ है।

एक ही उपदेश सार्थक है कि कैसे हम आत्म-दृष्टा बन जायें? कैसे हम मन की समस्त वृत्तियों के प्रति जागें? जागते ही हमारा संबंध उन सब वृत्तियों से टूट जाता है जिनके कारण हम मूर्च्छित थे। मूर्च्छा ही हिंसा का कारण थी। मूर्च्छा से ही अब्रह्मचर्य, वासना आदि वृत्तियाँ और समस्त विकार उपस्थित थे। मूर्च्छा हटने पर, जैसे ही जीवन में जागरण आता है तो एक क्रांति घटित होती है। मूलतः आत्म-जागरण ही योग, ध्यान और धर्म है। आत्म-जागरण ही एकमात्र सूत्र है जिससे हम बाहरी एवं आंतरिक दोनों रूपों में समृद्ध हो सकते हैं।